हिन्दी के विकास में जैन विद्वानों का योगदान

□ डॉ० प्रेमचन्द्र रांवका

हिन्दी भारतवर्ष की प्रधान भाषा है। इस विशाल देश की बहुत बड़ी संख्या हिन्दी भाषा के किसी न किसी रूप का व्यवहार करती है। जन-जन की भाषा होने से इसे झोंपड़ी से लेकर महलों तक आदर प्राप्त हुआ है। इस भाषा में विपुल परिमाण में साहित्य रचा गया है। अब तक सैकड़ों ही नहीं अपितु हजारों कवियों ने इस भाषा में अपनी विविध कृतियों से मां भारती के भण्डार को भरा है। वस्तुतः इस भाषा का साहित्य लोक-भाषा का साहित्य है।

भारतीय संस्कृति के पिछले हजार वर्षों के रूप को समझने के लिए हिन्दी एकमात्र तो नहीं लेकिन सर्वप्रधान साधन अवश्य है। हिन्दी भाषा की उत्पत्ति के साथ ही भारतीय संस्कृति एक विशेष दिशा की ओर मुड़ती है। भारतीय संस्कृति की जो छाप प्रारम्भ की हिन्दी भाषा पर पड़ी है वह इतनी स्पष्ट है कि केवल भाषा के अध्ययन से ही हम भारतीय संस्कृति के विभिन्न रूपों का अनुमान लगा सकते हैं। हिन्दी भाषा में उपलब्ध साहित्य का मूल्य केवल साहित्यिक क्षेत्र में ही नहीं है, वह हमारे पिछले हजार वर्षों के सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक अवस्थाओं के अध्ययन का भी सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। समूचे मध्य युग के अध्ययन के लिए संस्कृत की अपेक्षा इस भाषा का साहित्य कहीं अधिक उपादेय और विश्वसनीय है। यह लोक-जीवन का सच्चा और सर्वोत्तम निर्देशक है।

संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश की भांति हिन्दी भाषा में भी विशाल परिमाण में जैन साहित्य रचा गया है। जैनाचार्यों, संतों एवं कवियों का भाषा-विशेष के प्रति कभी आग्रह नहीं रहा। उन्होंने तो जन सामान्य की उपयोगिता की दृष्टि से अपने समय की लोकभाषा को अपने काव्य-सृजन का माध्यम बनाया। यही कारण है कि भारत की सभी प्रसिद्ध भाषाओं में जैन कवियों द्वारा रचित साहित्य मिलता है।

सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन में जैन साहित्य सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है। यह साहित्य भारतीय वाङ्मय का अपरिहार्य अंग है। जर्मन विद्वान् डॉ० एम० विण्टरनिट्ज का कथन है कि भारतीय भाषाओं के इतिहास की दृष्टि से भी जैन साहित्य बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जैन सदा इस बात का ध्यान रखते थे कि उनका साहित्य अधिक से अधिक जनता को प्रभावित करे। इसी कारण जैन विद्वानों ने हिन्दी भाषा में भी प्रचुर साहित्य रचा। परन्तु खेद है कि हिन्दी में सातवीं से चौदहवीं शताब्दी तक लोक भाषा में जिस साहित्य का सृजन हुआ, उसकी उपेक्षा ही रही, जिसका परिणाम परवर्ती जैन साहित्य पर भी पड़ा।

जैन कवियों द्वारा रचित साहित्य को धार्मिक साहित्य की संज्ञा देकर वर्षों तक उसे साहित्य की परिधि में परिगणनीय नहीं समझा गया। यही कारण है कि समूचे हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस तरह के कुछ कवियों को छोड़कर शेष कवि अछूते ही रहे। परन्तु क्या जैन साहित्य मात्र धार्मिक साहित्य ही है? क्या वह साहित्य की परिसीमा में परिगणनीय नहीं है? इस संबंध में अपने 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' में आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने जो तथ्य प्रस्तुत किये हैं वे उल्लेखनीय हैं। उनके अनुसार धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्य की संज्ञा से वंचित नहीं हो सकती। साहित्य में धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता कोई बाधा नहीं है। यह तो उसका अपना वैशिष्ट्य है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल जैन कवियों की रचनाओं से परिपुष्ट ही नहीं, उसके बिना अपूर्ण ही रहेगा। इस काल के अनेक उच्च कोटि के कवियों में स्वयंभू, पुष्पदन्त, योगीन्द्र, धनपाल, हरिभद्र सूरि, हेमचन्द्र, रामसिंह, सोमप्रभ सूरि, मेरुतुंग, देवसेन आदि हैं। इनके काव्य में मानव जीवन का पूर्ण चित्र प्राप्त होता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम भारतीय लेखक श्री शिवसिंह सेंगर जैन कवि 'पुष्पदंत' को हिन्दी का आदिकवि मानकर हिन्दी साहित्य का प्रारंभ सन् ७७० से मानते हैं और पुष्पदंत के अलंकार-ग्रन्थ को हिन्दी की प्रथम रचना। 'हिन्दी काव्यधारा' के लेखक श्री राहुल सांकृत्यायन ने 'स्वयम्भू' को आदि कवियों में श्रेष्ठ माना है। राहुल जी का कथन है कि इन जैन कवियों का विस्मरण करना हमारे लिए हानि की वस्तु होगी। ये कवि हिन्दी काव्य-धारा के प्रथम स्रष्टा थे। वे जैनेतर कवि अश्वघोष, भास, कालिदास और बाण की जूठी पत्तलें नहीं चाटते रहे, बल्कि उन्होंने एक योग्य पुत्र की तरह हमारे काव्य-क्षेत्र में नया सृजन किया है। नये चमत्कार, नये भाव पैदा किये। यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वयंभू आदि की कविताओं से प्रमाणित होता है। दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि कई सौ ऐसे नये-नये छन्दों की सृष्टि की जिन्हें हिन्दी कवियों ने बराबर अपनाया। हमारे विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी, तुलसी आदि के ये कवि ही उपजीव्य और प्रेरक रहे हैं। उन्हें भुलाकर मध्य काल में हमें बहुत क्षति हुई। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार यह काल भारतीय विचारों के मंथन का काल है और इसीलिए महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी के काव्य-रूपों के उद्भव और विकास का आरम्भ यही काल है। ये कवि और काव्य नाना दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं।

जैन साहित्यकारों का प्रथम ध्येय यद्यपि अपने मत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना था; तथापि वे साहित्य तत्त्व से पूर्ण थे। इन कवियों ने पुराणों से, अनुश्रुतियों से और लोककथाओं से आख्यान लेकर अपने काव्यों की रचना की। स्वयंभू की सर्वोत्कृष्ट रचना पउमचरिउ है जिसमें कथा-प्रसंगों की मार्मिकता, चरित्र चित्रण की पटुता, प्रकृति वर्णन की उत्कृष्टता और अलंकारिक तथा हृदय+स्पर्शी उक्तियों की प्रचुरता है। इनकी राज-स्तुतियां तो ज्यों-की-त्यों आदि काल की प्रमुख प्रवृत्ति ही बन गई। स्वयंभू की अन्य कृतियों में रिट्ठणेमि चरिउ, पंचमी चरिउ, स्वयंभू छन्द आदि हैं। पुष्यदन्त का णयकुमार चरिउ, जसहर चरिउ, महापुराण, तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकार, धनपाल की भविसयत्त कहा, योगीन्द्र का परमात्मप्रकाश, हेमचन्द्र का शब्दानुशासन, मेरुतुंग की प्रबंध चिंतामणि, देवसेन का पाहुड दोहा आदि मुख्य कृतियां है।

इन कवियों ने मुक्तक और प्रबंध दोनों प्रकार की रचनाएं कीं जिनमें परवर्ती भाषा-काव्य की अनेक प्रवृत्तियों का बीज निहित था। रासोबंध नामक काव्य के विविध छंद समन्वित रूप का प्रयोग भी इसी काल में आरम्भ हुआ जिससे वीर गाथा का वर्णन करने वाले पृथ्वीराज रासो जैसे रासो काव्यों की परम्परा चली। हिन्दी साहित्य के इतिहास में जितनी रासो-संज्ञक रचनाएं जैन कवियों ने रचीं उतनी किसी ने नहीं।

जैन विद्वानों एवं कवियों ने फाग और चर्चरी जैसे अनेक लोक-प्रचलित गानों का भी उपयोग किया है। कबीरदास के चांचर और तुलसीदास के सोहर आदि इसके प्रमाण हैं। आदिकाल के विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्य लोकप्रचलित काव्यों को धर्म-प्रचार के लिए अपनाते थे। हिन्दी काव्य में निर्गुणोपासक संतों के जिस प्रकार के दोहे मिलते हैं उनका ठीक वही रूप जैन कवि योगीन्द्र के परमात्म प्रकाश तथा योगसार और मुनि रामसिंह के पाहुड दोहे में मिलता है। जैन कथा काव्यों की प्रविधि की अनेक विशेषताएं भी परवर्ती हिन्दी काव्य में संक्रमित हुई हैं।

हिन्दी का आदिकालीन साहित्य अपभ्रंश साहित्य से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है कि इसकी पृष्ठभूमि के बिना हिन्दी साहित्य का अध्ययन पूर्ण नहीं हो सकता। हिन्दी के कतिपय विद्वान् तो अपभ्रंश साहित्य को भी 'पुरानी हिन्दी' 'प्राकृताभास हिन्दी' कहकर हिन्दी साहित्य में ही सम्मिलित कर लेते हैं। अपभ्रंश का ८० प्र. श. साहित्य जैन कवियों द्वारा प्रणीत है। इस प्रकार हिन्दी के आरम्भिक आदिकाल में जैन कवियों का योगदान उल्लेखनीय है।

हिन्दी के भक्तिकाल की समृद्धि में भी जैन कवियों, संतों एवं आचार्यों का उल्लेखनीय योगदान रहा। इस काल में भट्टारक सकल कीर्ति, भ० भुवन कीर्ति, भ० ज्ञान भूषण, ब्रह्म जिनदास, ब्रह्मश्चराज, ब्रह्मरायमल्ल, भ० शुभचन्द्र, बनारसीदास, समयसुन्दर, भूधरदास, धानतराय, ज्ञानसागर, जिन हर्ष आदि ने भक्ति की सरल रीति की भी अजस्र धाराएं प्रवाहित कीं। इन कवियों ने जन सामान्य की आवश्यकतानुसार साहित्य की विविध विधाओं का सृजन कर लोक-मानस को परितृप्त किया। इन कवियों का साहित्य जन सामयिक जीवन से कटा हुआ नहीं रहा। जन-सामान्य के निकट होने से इस काल के जैन कवियों द्वारा रचित साहित्य आध्यात्मिकता के साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष को भी अपने में समाविष्ट करता है। काव्य के विविध रूपों के विकास और उस समय की चिन्तना का ज्ञान भी इसी के द्वारा प्राप्त होता है।

भक्तिकाल में १५वीं शताब्दी के महाकवि ब्रह्म जिनदास ऐसे जैन कवि हैं जिन्होंने अपनी ७० से भी अधिक रचनाओं से मां भारती की सेवा की। इनके 'राम रास' और 'हरिवंश पुराण रास' हिन्दी की प्रसिद्ध एवं प्राचीनतम जैन रामायण और जैन महाभारत हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में ब्रह्म जिनदास अकेले ऐसे कवि हैं जिन्होंने विविध विषयक लगभग ५० रास संज्ञक काव्यों का सृजन किया। लोक भाषा में तुलसी से पूर्व 'राम रास' (र० का० सं १५०८) की रचना कर ब्रह्म जिनदास ने हिन्दी राम काव्य परम्परा का सूत्रपात और नेतृत्व किया। रूपक काव्य परम्परा में 'परम हंस स्थल' की अपनी विशिष्ट छवि और भंगिमा है।

अन्य कवियों में भ० कुमुदचन्द्र, ब्र० जयसागर, रत्नकीर्ति, सुरेन्द्रकीर्ति, दौलतराम कासलीपाल, टोडरमल्ल, धीहल आदि हैं। इन कवियों ने हिन्दी साहित्य के विकास में जो कार्य किया वह स्वर्णाक्षरों में उल्लेखनीय है। जैन कवियों की हिन्दी सेवा प्रशंसनीय है। जैन कवियों के साहित्य में भारतीय अध्यात्म-धारा का प्रवाह देखा जाता है। हिन्दी साहित्य की आध्यात्मिक चेतना को आज तक जाग्रत और क्रमबद्ध रखने में जैन साहित्य की दार्शनिक संवेदना की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल से आज तक जैन कवियों की हिन्दी सेवा कथ्य और शिल्प, भाव-भाषा दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org